International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(4): 09-14

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(4): 09-14
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-04-2022
Accepted: 19-05-2022

तेज प्रकाश
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

Corresponding Author:
तेज प्रकाश
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

पाणिनीय अष्टाध्यायी में आत्मनेपद-व्यवस्था

तेज प्रकाश

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2022.v8.i4a.1795

सारांश
पद और वाक्य के अर्थ का पूर्णतः शुद्ध बोध हो सके, तदर्थ ही व्याकरण शास्त्र में परस्मैपद और आत्मनेपद की व्यवस्था की गई है, इससे पृथक् उभयपद का परिगणन भी किया जाता है। जिन धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद का विधान होता है, वे धातुएँ उभयपदी कहलाती हैं। परस्मैपद में धातुओं के रूप सर्वसामान्य जन भी अनायास रूप में प्रयोग कर लेते हैं किन्तु वे आत्मनेपद को क्लिष्ट समझ आत्मनेपद को परिहेय बताते हैं, संस्कृतभाषा को दुरूह बताकर इससे दूर भाग खड़े होते हैं। अत एव आत्मनेपद क्या है, कहाँ, किन-२ धातुओं से और किन-२ अवस्थाओं में होता है, इत्यादि का ध्यान रखते हुए पाणिनीय पद्धति को सहज और सरल जान ही प्रस्तुत शोधलेख में अष्टाध्यायी में प्रसृत आत्मनेपद की नियमन-व्यवस्था को प्रकाशित कर विवृत करने का यत्न किया गया है।

कुटशब्द : पाणिनीय अष्टाध्यायी, आत्मनेपद-व्यवस्था

प्रस्तावना
आत्मनेपद विधायक सूत्रों में अष्टाध्यायी में आचार्य पाणिनि ने आत्मनेपद शब्द का प्रयोग क्रमशः अनुदात्तङित आत्मनेपदम्[1], तङानावात्मनेपदम्[2], आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्[3], आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्[4], टित आत्मनेपदानां टेरे[5], आत्मनेपदेष्वनतः[6], लोपस्त आत्मनेपदेषु[7] आदि सूत्र साक्षात् पढ़े हैं, जिनमें से प्रथमाविभक्त्यन्त सूत्र ही आत्मनेपदसञ्ज्ञक सूत्र है। क्रिया के द्योतक आत्मनेभाष और परस्मैभाष के लिये पारिभाषिक शब्द 'उपग्रह संज्ञा' प्रसिद्ध है। हेलाराज के अनुसार अलौकिक एवं लोक प्रसिद्ध और शिष्टों द्वारा शास्त्र में इस संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। भर्तृहरि ने इसका विश्लेषण व्यापकरूपेण किया है। उपग्रहसमुद्देश की २७ कारिकाओं का प्रकीर्णप्रकाश और अम्बाकर्त्री टीका के साथ गहन विवेचन किया गया है।

[1] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१२
[2] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/४/९९
[3] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः २/४/४४
[4] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/१/५४
[5] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/४/७९
[6] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ७/१/५
[7] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ७/१/४१

विषयप्रतिपादन

ध्यातव्य है कि लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः[8] सूत्र से लकारों का विधान किया जाता है। किन्तु लकार कहने से क्रमशः लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् का बोध होता है। ये लकार ही प्रत्यय कहलाते हैं, जो कि धातुओं से विभिन्न अर्थों में किये जाते हैं। ये सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में होते हैं, और कर्ता व कर्म के प्रयोग विवक्षा के अधीन होते हैं। धातु के अर्थ को अभिव्यक्तीकरणार्थ ही लकारों एवं इनके कर्ता, कर्म, भाव को द्योतित करने के लिए लः परस्मैपदम्[9] से सामान्य सञ्ज्ञा परस्मैपद सञ्ज्ञा का विधान किया जाता है। इसके साथ ही आकडारादेका सञ्ज्ञा[10] सूत्र से केवल एक सञ्ज्ञा का विधान प्राप्त है।

उदाहरण के रूप में पठ व्यक्तायां वाचि[11] सकर्मकधातु से कर्ता में लकार के प्रयोग करने पर रामः पुस्तकं पठति तथा कर्म में लकारों के प्रयोग से रामेण पुस्तकं पठ्यते वाक्य शुद्ध होते हैं। इसके साथ ही अकर्मक धातुओं से उपर्युक्त लकार प्रत्ययों का प्रयोग कर्ता और भाव में होता है। उदाहरणार्थ अकर्मक धातु पत्लृ गतौ से कर्ता अर्थ में लकार प्रत्यय होने से फलं पतति तथा भाव अर्थ में लकार प्रत्यय होने पर फलेन पत्यते वाक्य शुद्ध होते हैं।

उक्त दशों लकारों के स्थान पर ही आचार्यपाणिनि ने तिप्तझिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासांथांध्वमिड्वहिमहिङ्[12] से लकार के स्थान पर अष्टादश प्रत्ययों के आदेश का विधान किया है। क्योंकि लकार परस्मैपदसञ्ज्ञक होते हैं, अतः इनके स्थान पर आदेश होने के कारण इन प्रत्ययों की भी परस्मैपद सञ्ज्ञा स्वतः हो जाती है।

दो प्रकार से शब्दसाधुत्व निष्पन्न करना चाहिए प्रथम सामान्य को कहना चाहिए तथा उसके पश्चात् विशेष का। परस्मैपद एक सामान्य सञ्ज्ञा का विधान करने के पश्चात् धातु के अर्थ के प्रकाशनार्थ लकार के स्थान पर आदिष्ट नौ प्रत्ययों को तङ् प्रत्याहार कहकर तथा आन आदेशों की विशेष सञ्ज्ञा आत्मनेपद का विधान तङानावात्मनेपदम् सूत्र से होता हैं। इन नौ प्रत्ययों में प्रथम पुरुष के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का क्रमशः त, आताम्, झ, मध्यम पुरुष के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का क्रमशः थास्, आथाम्, ध्वम् और उत्तम के पुरुष एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का क्रमशः इड्, वहि, महिङ् से बोध होता है। ये नौ प्रत्यय उपर्युक्त दशों लकार के अर्थों का द्योतन धातु के साथ मिलकर करते हैं। इसके साथ आन कहकर शानच् और कानच् प्रत्ययों का कहा गया है। लट्लकार के स्थान पर शानच्[13] तथा लिट्लकार के स्थान पर कानच्[14] आदेश होते हैं। इस प्रकार कुल एकादश आदेशों की ही आत्मनेपद सञ्ज्ञा सिद्ध है।

आत्मनेपदविधायक प्रमुख सूत्रद्वय

काशिकाकार आत्मनेपदविधायक प्रथम सूत्र के अर्थ को प्रारम्भ करते समय लिखते हैं, "अविशेषेण धातोरात्मनेपदं परस्मैपदं च विधास्यते"। अर्थात् धातु से लकार के स्थान पर विधीयमान अष्टादशप्रत्यय सामान्यतः आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों ही प्राप्त होते हैं। शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्[15] पर काशिकाकार के वाक्य पूर्वेण प्रकरणेनात्मनेपदनियमः कृतः, न परस्मैपदनियमः, तत् सर्वतः प्राप्नोति[16] को पदमञ्जरीकार स्पष्ट करते हैं कि आत्मनेपदनियमः कृत इति। प्रकृत्याश्रयोऽर्थाश्रयश्च, अनुदात्तङितोरेवात्मनेपदं भावकर्मणोरेवेति।[17] अर्थात् सभी प्रकृति और अर्थों से सामान्यतः परस्मैपद का विधान किया गया है। जिसके पश्चात् ही कुछ प्रकृति (धातुओं) से कुछ विशिष्ट अर्थों (विशेषणों) में आत्मनेपद का विधान किया गया है।[18]

अनुदात्तङित आत्मनेपदम्[19]

जिन धातुओं का अनुदात्त स्वर इत्सञ्ज्ञक तथा जिनका ङकार इत्सञ्ज्ञक है, उन सभी से आत्मनेपद का विधान होता है। उदाहरणार्थ अनुदात्तेत् आस उपवेशने धातु से आत्मनेपद करने पर आस्ते, आसाते आदि रूप तथा ङित् शीङ् शये, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने आदि से आत्मनेपद का विधान करने पर शेते, सूते आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

भावकर्मणोः[20]

भाव और कर्म अर्थ में धातु से लकार के स्थान पर विहित तिबादि प्रत्ययों में से आत्मनेपद को द्योतित करने वाले प्रत्ययों का ही प्रयोग होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि लः कर्मणि चाभावे चाकर्मकेभ्यः से सकर्मक धातु से कर्म

---

[8] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/४/६९
[9] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/४/९९
[10] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/४/
[11] धातुपाठः
[12] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/४/७८
[13] लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/२/१२४
[14] लिटः कानज्वा अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ३/२/१०६
[15] अष्टाध्यायी १/३/७८
[16] काशिका १/३/७८
[17] पदमञ्जरी १/३/७८
[18] येभ्यो धातुभ्यो येन विशेषणेनात्मनेपदमुक्तम्। काशिका १/३/७८
[19] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१२
[20] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१३

अकर्मक धातु से भाव में प्रत्यय का विधान होता है। उदाहरणार्थ भाव अर्थ में ग्लायते भवता, सुप्यते भवता, आस्यते भवता आदि में धातु से भाव अर्थ में लकार के स्थान पर आत्मनेपद नियम का विधान हुआ है। इसी प्रकार कर्म अर्थ में क्रियते कटः, ह्रियते भारः में धातु से आत्मनेपद का विधान कहा गया है। कुछ स्थानों पर कर्म ही कर्ता के रूप में प्रयुक्त होता है, ध्यातव्य है कि शुद्ध कर्ता अर्थ यहाँ अभिप्रेत नहीं है। इसी कर्मकर्ता अर्थ में आत्मनेपद कहा गया है। उदाहरण वाक्य लूयते केदारः स्वयमेवेति।

इसके साथ ही कर्तरि कर्मव्यतीहारे[21] सूत्र से अन्य सम्बन्धिनी क्रिया को अन्य करने वाले के होने पर अर्थात् कर्मव्यतीहार (क्रिया के विनिमयन) से युक्त धातु से कर्ता अर्थ में भी आत्मनेपद का विधान किया जाता है। व्यतिलुनते, व्यतिपुनते में कर्मव्यतीहार के कारण ही आत्मनेपद हुआ है।

सोपसर्गधातुओं से आत्मनेपदविधान

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् से प्राप्त परस्मैपद के निराकरण हेतु अपवाद रूप में आचार्य ने विभिन्न उपसर्गों से युक्त विभिन्न धातुओं से आत्मनेपद का विधान किया है, जिनका परिगणन यहाँ किया जा रहा है। नेर्विशः[22] नि उपसर्गपूर्वक विश प्रवेशने, वि, परा उपसर्गपूर्वक जि जये[23], अव उपसर्गपूर्वक गॄ निगरणे[24], अनु, सम्, परि, आङ् उपसर्गपूर्वक क्रीड़ विहारे[25], आङ् उपसर्गपूर्वक णु स्तुतौ, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्[26], सम्, अव, प्र, वि उपसर्गपूर्वक ष्ठा गतिनिवृत्तौ[27], सम् उपसर्गपूर्वक क्ष्णु तेजने[28], धातुओं से आत्मनेपद होता है।

सोपसर्गधातुओं से विभिन्न अर्थों में आत्मनेपदविधान

अकूजन अर्थ में सम् उपसर्गपूर्वक क्रीड़ विहारे, क्षमा = उपेक्षा, कालहरण अर्थ में आङ् उपसर्गपूर्वक णिजन्त गम्लृ गतौ, जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष विद्योपादाने, आशीर्वाद अर्थ में नाथ्, गमनादि स्वभाव वाला होना (गतताच्छील्य) अर्थ में अनु पूर्वक हृ, हर्ष, जीविका, कुलाय अर्थात् घोंसला करना अर्थ में कॄ विक्षेपे, उलाहना/उपलम्भन (वाचा शरीरस्पर्शनम्) अर्थ में शप[29], अपने अभिप्राय के प्रकाशन, स्थेय[30] की आख्या[31], अनूर्ध्वकर्म[32], के अर्थ में स्था, मन्त्रकरण (देवपूजा, संगतिकरण, मित्रकरण, पन्था) अर्थ में उप उपसर्गपूर्वक स्था[33], वृत्ति = अप्रतिबन्ध, सर्ग = उत्साह, तायन = स्फीतता, विस्तार[34] अर्थ में क्रमु पादविक्षेपे[35], वृत्ति, सर्ग, तायन, विस्तार[36] अर्थ में उप, परा उपसर्गपूर्वक क्रमु पादविक्षेपे[37], उद्गमन अर्थ में आङ् उपसर्गपूर्वक क्रमु पादविक्षेप[38], पादविहरण = पैर उठाना अर्थ में वि उपसर्गपूर्वक क्रमु पादविक्षेप[39], प्र, उप उपसर्गों के तुल्यार्थक होने पर क्रमु पादविक्षेप[40], अपह्नुव = झूठ बोलना अर्थ में ज्ञा अवबोधने[41], आध्यान = उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करने से पृथक् अर्थ में सम्, प्रति उपसर्गपूर्वक ज्ञा अवबोधने[42], भासन = दीप्ति, उपसम्भाषा = सान्त्वना देना, ज्ञान = अच्छी प्रकार से समझना, यत्न = उत्साह, विमति = नाना प्रकार की बुद्धि, उपमन्त्रण = एकान्त में बात करना[43] अर्थ में वद व्यक्तायां वाचि[44], व्यक्तवाक् (मनुष्य) के समुच्चारण = सामूहिक उच्चारण के अर्थ वद व्यक्तायां वाचि[45], प्रतिज्ञान = अभ्युपगम, स्वीकार करना अर्थ में सम् उपसर्गपूर्वक गॄ निगरणे[46], उत् उपसर्गपूर्वक सकर्मक चर गतिभक्षणयोः[47], सम् उपसर्गपूर्वक तृतीया विभक्ति से युक्त चर गतिभक्षणयोः[48], सम् उपसर्गपूर्वक चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त तृतीय विभक्ति से युक्त (अशिष्टव्यवहार के लिए) दाण् दाने[49], स्वकरण = अपना बनाना अर्थ में उप उपसर्गपूर्वक यम्[50], सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ,

---

21 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१४

22 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१७

23 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१९

24 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/५१

25 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२१

26 काशिका १/३/२१

27 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/२२

28 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६५

29 काशिका १/३/२१

30 तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थेयः, विवादपदनिर्णेता लोके स्थेय इति प्रसिद्धः, तस्य प्रतीत्यर्थमाख्याग्रहणम्। काशिका १/३/२३

31 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२३

32 कर्मशब्दः क्रियावाचीति। पदमञ्जरी, अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२४

33 अष्टाध्यायी १/३/२५

34 काशिका १/३/३८

35 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३८

36 काशिका १/३/३८

37 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३८

38 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४०

39 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४१

40 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४२

41 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४४

42 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४६

43 काशिका १/३/४७

44 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४७

45 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४८

46 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/५२

47 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/५३

48 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/५४

49 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/५५

50 अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/५६

दृश[51], शित् भाव में शद्लृ शातने[52], लुङ्, लङ् अर्थ में व शिद् भाव में मृङ् प्राणत्यागे[53], सन्नन्त से पूर्व आत्मनेपदी धातु से सन्नन्त होने पर[54], अनवन (अपालन) अर्थ में भुज पालनाभ्यवहारयोः[55] धातुओं से आत्मनेपद का विधान है।

सोपसर्गधातुओं से अकर्मकार्थ आत्मनेपदविधान

इससे पृथक् उपसर्ग से युक्त धातुओं से आत्मनेपद का विधान तो है किन्तु जो धातु क्वचित् सकर्मक रूप में ही प्रयुक्त है, उससे अकर्मक अर्थ को दर्शाने के लिये भी आत्मनेपद किया जाता है। उप उपसर्गपूर्वक अकर्मक ष्ठा गतिनिवृत्तौ[56] (तिष्ठ्[57]), उत्, वि उपसर्गपूर्वक अकर्मक तप[58], आङ् उपसर्गपूर्वक अकर्मक यम उपरमे, हन हिंसागत्योः[59], सम् उपसर्गपूर्वक अकर्मक गम्लृ गतौ, ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु[60], प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, स्वृ शब्दापतापयोः, ऋ गतिप्रापणयोः, ऋ गतौ, श्रु श्रवणे, विद ज्ञाने, दृशिर् प्रेक्षणे[61], वि पूर्वक अकर्मक डुकृञ् करणे[62], अनु उपसर्गपूर्वक अकर्मक वद व्यक्तायां वाचि[63], धातुओं से आत्मनेपद के प्रयोग देखा जाता है।

कर्तृगामी क्रियाफल-सम्बद्ध आत्मनेपदव्यवस्था

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्[64] से कर्ता के अर्थ में परस्मैपद होने पर स्वरितेत् और ञित् धातुओं से आत्मनेपद का विधान किया जाता है। किन्तु इस विधान के लिये आचार्य पाणिनि नियम करते हैं, "स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले"[65] अर्थात् स्वरितेत् और ञित् धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल रहने पर ही आत्मनेपद होगा। इसी सूत्र की वृत्ति में काशिकाकार लिखते हैं, "शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते स्वरितेतो ये धातवो ञितश्च तेभ्य आत्मनेपदं भवति, कर्त्तारं चेत्क्रियाफलमभिप्रैति। क्रियायाः फलं = क्रियाफलं प्रधानं यदर्थमसौ क्रिया आरभ्यते तच्चेत् कर्तुर्लकारवाच्यस्य भवति"।[66] इसी सिद्धान्त को आचार्य भर्तृहरि भी अपने वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड में कहते हैं-

यस्यार्थस्य प्रसिद्ध्यर्थमारभ्यन्ते पचादयः।
तत्प्रधानं फलं तेषां न लाभादि प्रयोजनम्॥[67]

अर्थात् जिस फल को विचार कर क्रिया की जाए, वह फल उस क्रिया का प्रधान फल कहलाता है, और यदि यह प्रधान फल कर्ता को प्राप्त हो तो की जा रही क्रिया से आत्मनेपद का विधान होता है।

यथा यज् और पच् धातु धातुपाठ में स्वरितेत् पठित हैं। जब यज् और पच् धातुओं का स्वर्गादिप्राप्ति और पाकप्राप्ति रूप प्रधान फल यज्ञकर्ता और पाचक को ही प्राप्त होगा, तब उद दशा को अभिव्यक्त करने के लिए ही आत्मनेपद का प्रयोग किया जायेगा, जिससे याजकः यजते और पाचकः पचते वाक्य भी शुद्ध कहलाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि क्रिया का प्रधानभूतफल कर्ता को प्राप्त न होने पर परस्मैपद ही होता है यथा याजकः यजति और पाचकः पचति। इनमें परस्मैपद का विधान करने से ज्ञात होता है कि क्रिया का प्रधान फल कर्ता को न प्राप्त होकर अन्य को प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार महर्षि पाणिनि को क्रिया के फल की ओर भी ध्यान था।

स्वरितेत् और ञित् धातुओं से पृथक् णिजन्त धातुओं से[68] भी कर्तृगामी क्रियाफल के रहने पर ही आत्मनेपदविधान है। जिनसे कारयते, पाचयते, हारयते आदि धातुरूप सिद्ध होते हैं।

इनसे पृथक् क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर ही अप उपसर्गपूर्वक वद व्यकतायां वाचि धातु से आत्मनेपद होता है[69], जिससे अपवदते रूप शुद्ध स्वीकृत है और धनकामो न्यायम् अपवदते वाक्य का अर्थ धन का लोभी व्यक्ति न्याय छोड़कर बोलता है, होता है। यदि यहाँ आत्मनेपद नहीं होता तो वाक्य का अन्यार्थ ही हो जाता। अत एव आचार्य पाणिनि पाँच सूत्रों को पढ़ते हैं।

इसी प्रकार सम्, उद्, आङ् उपसर्ग से युक्त यम् धातु से कर्तृगामी क्रियाफल के अर्थ में आत्मनेपद तो होता है किन्तु ग्रन्थ का विषय न होने पर।[70] जिसके कारण उद्यच्छति चिकित्सां वैद्यः में चिकित्सा शास्त्र में वैद्य द्वारा अधिगमपूर्वक यत्न अवश्य किया जा रहा है किन्तु वह ग्रन्थ से सम्बद्ध है, इसीसे उद्यच्छति में आत्मनेपद न होकर परस्मैपद हो जाता है। आत्मनेपद कहने पर ही

[51] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/५७
[52] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६०
[53] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६१
[54] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६२
[55] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६६
[56] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२६
[57] पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः सूत्र से (ष्ठा) स्था को तिष्ठ आदेश। अष्टाध्यायीसूत्रपाठः ७/३/७८
[58] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२७
[59] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२८
[60] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२९
[61] काशिका १/३/२९
[62] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३५
[63] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४९
[64] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७८
[65] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७२
[66] काशिका १/३/७२
[67] वाक्यपदीयम् ३/१२/१८
[68] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७४
[69] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७३
[70] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७५

समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे क्रियाफल के कर्तृगामित्व को सिद्ध कर सकता है और वैयाकरण समुदाय क्रियाफल को द्योतित करने के लिए भारम् उद्यच्छते, वस्त्रम् उद्यच्छते कह पाता है।

इनसे पृथक् उपसर्गरहित ज्ञा अवबोधने धातु से भी क्रियाफल की कर्तृप्राप्ति की सिद्धि के लिए आत्मनेपद होता है।[71] यथा गां जानीते, अश्वं जानीते इत्यादि में उपसर्गरहित ज्ञा धातु से परस्मैपद न होने पर ही गाय और अश्व को पहचानने का फल कर्ता द्वारा ही प्राप्त हो रहा है, कह सकते हैं। न्यासकार और पदमञ्जरीकार का मत है कि ज्ञा धातु से तो अकर्मकार्थ होने से अकर्मकाच्च सूत्र से आत्मनेपद सिद्ध ही था, अतः अकर्मकार्थ के लिए ही इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया गया है।

स्वरितञितः० आदि पाँच सूत्रों से तत्तत् धातु आदि से वहाँ आत्मनेपद कहा गया जहाँ कर्तृगामी क्रिया का प्रधान फल परिलक्षित हो रहा होता है। किन्तु उपपद (समीपे श्रूयमाणं पदम् उपपदम्) द्वारा कर्तृगामी क्रियाफल के द्योतित होने पर विकल्प से आत्मनेपद होता है।[72] यथा स्वं यज्ञं यजते, यजति वाक्य में स्वं शब्द उपपद में स्थित है, जिसके द्वारा क्रियाफल की प्रतीति कराये जाने से यजति और यजते रूप बनते हैं।

सोपसर्ग धातुओं से अकर्तृगामी क्रियाफलार्थ आत्मनेपद का नियमन

आचार्य पाणिनि ने कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद का विधान करने से पूर्व ही अकर्तृगामी क्रियाफल को दर्शाने के लिए नियमन किया है। परि, वि, अव उपसर्गपूर्वक डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये[73], नि, समु, उप, वि उपसर्गपूर्वक ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च[74] धातुओं से बिना किसी विशेष अर्थ के ही अकर्त्रभिप्रायार्थ आत्मनेपद का नियम है।

अकर्तृगामी क्रियाफलार्थ आत्मनेपद का नियमन

अष्टाध्यायी में अकर्त्रभिप्रायार्थ विभिन्न धातुओं के विभिन्न विशेष अर्थों में आत्मनेपद का विधान कहा गया है। उन सभी का परिगणन यहाँ प्रस्तुत है-

अनास्यविहरण अर्थ में आङ् पूर्वक डुदाञ् दाने[75], स्पर्द्धा अर्थ में आङ् उपसर्गपूर्वक ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च[76], गन्धन = अपकारयुक्त हिंसात्मक सूचन अर्थात् चुगली करना, अवक्षेपण = भर्त्सन, सेवन = अनुवृत्ति अर्थात् सेवा करना, साहसिक्य = बलात् करना, प्रतियत्न = अन्य गुण को अन्य में बदलना, प्रकथन = बढ़ा चढ़ा कर कहना, उपयोग = धर्मादि के लिए लगाना अर्थों में डुक्रीञ् करणे[77], प्रसहन अर्थात् अभिभव, अपराजय (पराजेतुं समर्थस्यैव क्षमया यस्तदभावः स इत्यर्थः[78]) के अर्थ में अधि उपसर्गपूर्वक डुक्रीञ् करणे[79], वि उपसर्गपूर्वक शब्दकारक डुक्रीञ् करणे[80], सम्मानन = पूजन, उत्सञ्जन = उत्क्षेपण, आचार्यकरण = आचार्यक्रिया, ज्ञान = प्रमेयनिश्चय, भृति = वेतन, विगणन = ऋणादि का निर्यातन, व्यय = धर्मादि में विनियोग[81], कर्तृस्थ कर्म में अशरीर के रहते हुए[82] अर्थ में णीञ् प्रापणे[83], अकर्मक ज्ञा अवबोधने[84], आम्प्रत्यय से युक्त धातु के समान अनुप्रयुक्त डुक्रीञ् करणे[85], यज्ञसम्बन्धित पात्र के विषय न होने पर प्र, उप से युक्त युजिर् योगे[86], अनाध्यान अर्थात् उत्कण्ठापूर्वक स्मरण को छोड़कर अण्यन्तावस्था में स्थित कर्म के ण्यन्तावस्था में कर्म व कर्त्ता होने पर = कर्तृस्थारम्भार्थ[87], हेतुभय के रहने पर ण्यन्त ञिभी भये और ष्मिङ् ईषद्धसने[88], प्रलम्भन = विसंवाद अर्थ में ण्यन्त गृधू अभिकाङ्क्षायाम्, वञ्चू प्रलम्भने[89], सम्मानन, शालीनीकरण, प्रलम्भन अर्थ में ण्यन्त लीङ् श्लेषण, ली श्लेषणे[90], मिथ्या उपपद में रहते अभ्यास अर्थ में ण्यन्त डुक्रीञ् करणे[91] धातुओं को पढ़कर आचार्य पाणिनि ने अकर्त्रभिप्रायार्थ आत्मनेपद का नियमन किया है। ध्यातव्य है कि उक्त धातुओं से कर्त्रभिप्रायार्थ के बोधक पञ्चक में से किसी न किसी सूत्र से आत्मनेपद सिद्ध ही है, की पुष्टि वृत्तिग्रन्थ काशिका से हो ही जाती है।

निष्कर्ष

संस्कृत व्याकरण का कार्य है कि वाक्यार्थ बोध भलीभाँति अर्थात् संस्कृत ही हो, तदर्थ ही प्रमाणभूत, दर्भपवित्रपाणि, प्राङ्मुख उपविष्ट महर्षि पाणिनि ने पञ्चोपदेश किये। धातु, लकार, जो कि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रदत्त सञ्ज्ञाएँ हैं। लकार

[71] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७६
[72] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/७७
[73] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/१८
[74] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३०
[75] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/२०
[76] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३१
[77] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३१
[77] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३२
[78] पदमञ्जरी १/३/३३
[79] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३३
[80] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३४
[81] काशिका १/३/३६
[82] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३७
[83] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/३६
[84] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः १/३/४५
[85] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६३
[86] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६४
[87] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६७
[88] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६८
[89] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/६९
[90] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/७०
[91] अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, १/३/७१

को अभिव्यक्त करने के लिए धातुओं से अष्टादश प्रत्ययों का विधान है। जिनमें से आदि नव प्रत्यय परस्मैपद को तथा अन्तिम नव आत्मनेपद को कहते हैं। ये दोनों ही धातु से संयुक्त होकर धातु के अर्थ को प्रत्यायित कराने में समर्थ हैं। आत्मनेपद विधायक सूत्रों में अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, भावकर्मणोः, स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सूत्रों को वैयाकरणनिकाय द्वारा प्रमुखरूपेण स्वीकृत हैं। इनसे इतर कुछ धातुओं में उपसर्ग से युक्तता अथवा अयुक्तता, सकर्मकता या अकर्मकता, अकर्तृगामी क्रियाफलार्थवत्त्वता आदि के कारण आत्मनेपद सिद्ध होता है। जिनका परिगणन ऊपर कर दिया गया है।

सन्दर्भ

1. अय्यर, सुब्रह्मण्यम, तृतीय काण्ड, भूयोद्रव्य, गुण, दिक्, साधन, क्रिया, काल, पुरुष, संख्या, उपग्रह, लिङ्ग समुद्देश (द्वितीय भाग), वाक्यपदीय, भर्तृहरि, प्रकाश टीका, हेलाराज तथा अम्बाकर्त्री टीका, रघुनाथ शर्मा, वाराणसी, १९७९
2. आचार्य, पाणिनि, युधिष्ठिर मीमांसक (सम्पादक), अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, सोनीपत; रामलाल कपूर ट्रस्ट, २००६
3. आचार्य, पाणिनि, युधिष्ठिर मीमांसक (सम्पादक), धातुपाठः, सोनीपत; रामलाल कपूर ट्रस्ट, २००६
4. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, प्रथमावृत्तिः, सोनीपत; रामलाल कपूर ट्रस्ट, २००६
5. त्रिपाठी, जयशङ्करलाल, सुधाकर, मालवीय (सम्पादकद्वय), काशिका, न्यास-पदमञ्जरी-भाववोधिनी-टीकोपेता, प्राच्यभारतीयग्रन्थमाला-१८, वाराणसी; तारा प्रिंटिंग वर्क्स, १९८६
6. दीक्षित, पुष्पा, अष्टाध्यायी सहजबोध, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, २०१८
7. झा, अमर, वाक्यपदीय के क्रिया, काल, पुरुष, संख्या तथा उपग्रह समुद्देशों का आधुनिक संदर्भ में महत्त्व, दिल्ली; दिल्ली विश्वविद्यालय, २००८
8. बढ़ेई, जितेन्द्रिय, वाक्यपदीय के उपग्रह समुद्देश पर प्रकाश तथा अम्बाकर्त्री टीका का विवेचनात्मक अध्ययन, दिल्ली; दिल्ली विश्वविद्यालय, २०१५
9. मिश्र, नारायण, वामन, जयादित्य, काशिका, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, २०११
10. मिश्र, शोभित, काशिका, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस, १९५२
11. मीमांसक, युधिष्ठिर, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, सोनीपत; रामलाल कपूर ट्रस्ट, संवत् २०३०
12. वेदालंकार, रघुवीर, काशिका, चौखम्बा ओरियण्टालिया, दिल्ली, २०१०
13. शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, कालिका प्रसाद शुक्ल (सम्पादकद्वय), काशिकावृत्तिः, प्राच्यभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी, १९६५